फिल्म समीक्षा

अच्छा सिनेमा मानवीय संवेदना को गहनता से प्रभावित करता है। अच्छी फिल्म देखने का अनुभव अच्छी पुस्तक पढ़ने अथवा सजीव मानवीय जीवन स्थितियों से गुजरने जैसा होता है।

हर देश का अच्छा सिनेमा अपनी सामाजिक भूमिका एवं दायित्व की तलाश में ऐसे विषयों को चुनता है जो मानवीय स्थितियों तथा व्यवस्था पर सवाल उठाता है एवं दिशा देता है। निश्चित ही यह भी समाज में बेहतर शिक्षण का माध्यम है जो विचारों को सघनता से आंदोलित करता है।

इस बार हमने पुस्तक समीक्षा के स्थान पर फिल्म समीक्षा को चुना है। ईरानी मूल की फिल्म है - ब्लैकबोर्ड्स। फिल्म के माध्यम से कथित शिक्षा की अप्रासांगिकता, जड़ता एवं हर हाल में अपरिवर्तनीयता के मुद्दों को उभारा गया है।

शिक्षा का सलीब और तस्कर छात्र

❑ गिरिराज किराडू

ईरानी फिल्मों ने कथावस्तु, तकनीक एवं सामाजिक सरोकारों को लेकर फिल्म जगत में अपनी अलग पहचान बनाई है। ईरान की फिल्में उसी तरह का उदाहरण हैं जैसी बीसवीं सदी में युद्ध, कट्टरपंथ और बदहाली से त्रस्त रहे बहुत सारे छोटे देशों की कला रही है। 1979 की तथाकथित इस्लामी क्रांति के बाद का यह सिनेमा समाज, धर्मसत्ता, जो ईरान में साफ-साफ राजनीतिक सत्ता भी है, और कला के अंतर्संबंधों को तो ठीक से व्यंजित करता ही है, स्वयं कला की भूमिका और स्वरूप दोनों के बारे में सुखद व आश्चर्यजनक ढंग से आत्म-सजग है। समीरा मखमल बाफ की पहली फिल्म 'द एपल' एक यथार्थ घटना पर आधारित थी और फिल्म की बदौलत उन पात्रों के यथार्थ को प्रभावित किया जा सका जिन पर फिल्म आधारित थी। दो विक्षिप्त मानी जाने वाली छोटी लड़कियों की कहानी जिन्हें उनका पिता कैद रखता है। 'द एपल' को मिली विश्वव्यापी सराहना से प्रोत्साहित होकर समीरा ने ब्लैकबोर्ड्स बनाई जिसमें कुर्दिस्तान की पृष्ठभूमि में शिक्षा और राष्ट्रीयता के प्रश्न आपस में टकराते हैं। सन् 2000 में बनी इस फिल्म को कॉन्स में जूरी प्राइज मिला और स्वयं समीरा को विश्व की युवतम महिला निर्देशक के तौर पर बाद में कॉन्स जूरी बनने के लए आमंत्रित किया गया। युद्ध के माहौल में ईरान-इराक युद्ध में ईरान आ बसे इराकी कुर्द काफिले का देश-वापसी की यात्रा-कथा को समीरा शिक्षा के प्रश्न से टकरा देती हैं। फिल्म में दो काफिले हैं- वृद्ध पुरुषों के इस कुर्द काफिले के साथ-साथ एक काफिला उन बच्चों का है जिन्हें अपने को कायम रखने के लिए तस्करी करनी पड़ती है। एक तरह से ये दो काफिले उन दो पीढ़ियों का प्रतिनिधित्व करते हैं जो अपने-अपने क्रमश: अतीत व भविष्य के अंधकार में डूबी हुई हैं और इसलिए फिल्म में उस तीसरी मंझली पीढ़ी शिक्षकों - से कुछ भी ग्रहण नहीं करना चाहती जो अपनी अर्जित शिक्षा से इन दोनों को कुछ 'फायदा' पहुंचाना चाहती है। विडंबना यह है कि इससे अधिक वह पीढ़ी अपने बचे रहने के, स्व-प्रमाणन के संघर्ष में फंस जाती है। युद्ध के समय में दो जिद्दी शिक्षक, जो मूलत: एक ही है, इन दो काफिलों को 'पढ़ाने' की कोशिश करते हैं और अंतत: इसमें पूरी तरह असफल होते हैं। अपनी व्यंजना में यह आधुनिक शिक्षा के समूचे औपचारिक कर्मकांड पर एक टिप्पणी बन जाती है। इस फिल्म के बारे में खुद समीरा मखमल बाफ का कहना है, ''यह फिल्म मेरी अपनी पीढ़ी की भूमिका को समझने के लिए भी बनाई थी मैंने।''

कल्पना करें कि आप शिक्षक या छात्र या अभिभावक हैं और किसी कारण से वह बिल्डिंग जिसे आप स्कूल कहते हैं - किसी कारण से, किसी भी कारण से, ध्वस्त हो गई है, ऐसे में आप क्या करेंगे ? प्रश्न यह नहीं है कि आप खुश होंगे या उदास होंगे बल्कि आप क्या करेंगे ? आप शिक्षक हों या छात्र या अभिभावक आप सिर्फ प्रतीक्षा करेंगे। किसी वैकल्पिक या नई बिल्डिंग की। ऐसा तो नहीं ही होगा कि यदि आप छात्र हैं तो अपना बस्ता उठाकर शिक्षक को ढूंढ़ने निकल पड़ेंगे और यदि शिक्षक हैं तो अपना ब्लैकबोर्ड कंधों पर लाद कर छात्रों की तलाश में गलियों में घूमने लगेंगे। मुझे पूरा विश्वास है जिसे हम शिक्षा यानि

औपचारिक शिक्षा या स्कूलिंग कहते हैं वह हमारे लिए ऐसी अवश्य आन्तरिक भूख या विवशता नहीं हो सकी है कि हम ऐसा करें। यदि आपको यह एक असंभाव्य स्थिति लगती है, बल्कि अकल्पनीय भी तो इसमें कुछ भी अनुचित नहीं। किन्तु आप कल्पना करें और ये ज्यादा मुश्किल होगा आपके लिए कि युद्ध के दौरान एक स्कूल नष्ट हो गया है और आप उसके शिक्षक ब्लैकबोर्ड को अपने कंधों पर क्रॉस की तरह लादे पहाडों में छात्र ढूंढ़ रहे हैं। ऐसा नहीं है कि वे नहीं हैं। वे हैं पर वे आपके संभावित छात्र नहीं हैं, वे उग्र, आक्रामक और अपनी वय के अनुपात में दुखद ढंग से अतिवयस्क बच्चे हैं जिन्हें आपकी वर्णमाला में न सिर्फ दिलचस्पी नहीं बल्कि उसके प्रति धिक्कार का भाव है। एक क्रूर उदास करने वाली वयस्कता और तटस्थता। वे छात्र नहीं तस्कर हैं - दैनिक तस्कर, रोज सीमा के इस पार से उस पार कुछ पहुंचाते हुए कुशल लगभग पेशेवर तस्कर। सलीब की तरह ब्लैकबोर्ड लादे हुए एक शिक्षक और तस्कर छात्रों का एक काफिला। है न एक भयानक कल्पना। युवतर ईरानी निर्देशक समीरा मखमल बाफ की फिल्म ब्लैकबोर्ड्स इसी भयानक कल्पना के बारे में है। किन्तु यह सिर्फ एक पटकथा या कथा या कल्पना नहीं है। इराकी मूल के एक अर्द्धघुमंतू कुर्द काफिले के साथ ईरान के कुर्दिस्तान की पहाड़ियों से इराक सीमाओं की ओर बढ़ती यह कथा युद्ध, निर्वासन और देशप्रेम या मातृभूमि प्रेम जैसे कई उपाख्यानों को ब्लैकबोर्ड और तस्करी के इस मुख्य रूपक से मिला देती है। खुद समीरा के अनुसार यह आधा सच आधा फसाना है। आप शायद इस कल्पना के यथार्थ हो सकने की संभावना से इतने विचलित और बैचैन नजर आ रहे हैं और आपको फिल्मकार के इस वक्तव्य से कुछ राहत मिली है कि इसमें सच सिर्फ आधा है, उतना ही है जितना आप जानते हैं, कल्पना कर सकते हैं, सच बनाए रखना चाहते हैं। खैर इसमें भी कुछ अनुचित नहीं। पर इतना हम आपको परेशानी में डालने से बचाना चाहते हुए भी कहेंगे कि सच और फसाना जब मिल जाते हैं, एक दूसरे को और सघन और बड़ा और कभी-कभी और असहनीय कर देते हैं।

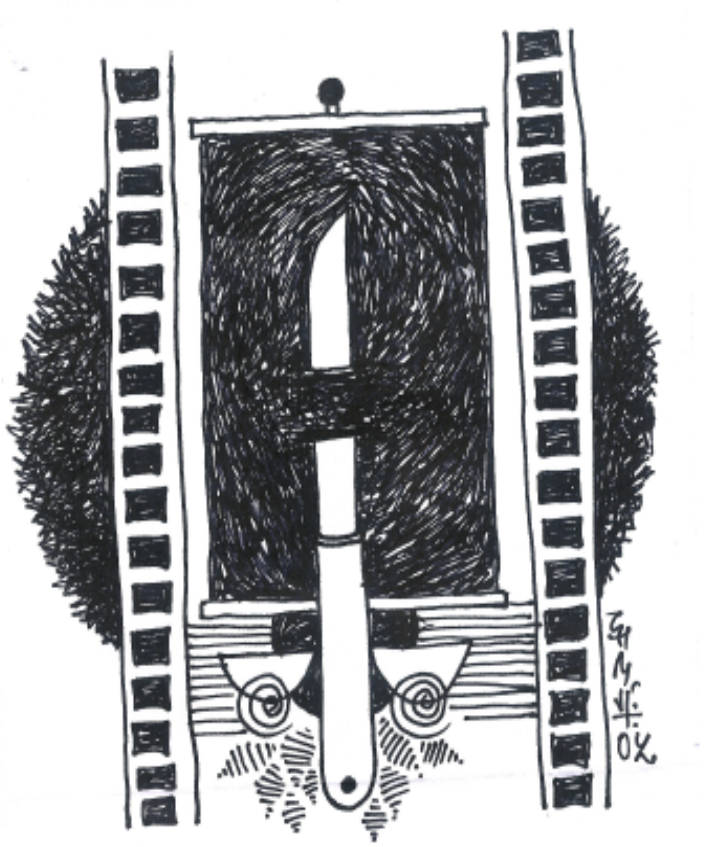

ब्लैकबोर्ड्स या तख्त-ए-सियाह बहुत सीधी-सी बात को हमारे ध्यान में लाती है : शिक्षा एक कुएं की तरह है, स्थिर और हर बार प्यासे को उस तक चल कर जाना होता है। स्कूल छात्र को नहीं ढूंढ़ता, छात्र स्कूल को ढूंढ़ता है। 'लोक कल्याणकारी' कहलाने वाली व्यवस्थाएं 'विकास' और 'कल्याण' के अपने 'प्रॉमिस' को पूरा करने के लिए संभावित छात्र को ढूंढ़ती हैं, उसे प्रेरित करती हैं, उसके अभिभावकों को प्रलोभन देते हैं किन्तु स्कूल इस अभियान में कुएं ही बने रहते हैं - अपनी जगह स्थिर, अटल। वे ऐसे 'ज्ञान के केन्द्र' बने रहते हैं जिसमें स्थान की स्थिरता के साथ ज्ञान भी अपरिवर्तनीय रूप में बना रहता है और इस तरह केन्द्राभिसारी विकास मॉडल के विश्वसनीय उपकरण भी। तख्त-ए-सियाह में यह गति केन्द्र से अपसरण की है, इस अर्थ में जनतांत्रिक है और एक बारगी देखने पर विकास मॉडल को भीतर से प्रतिरोध देती हुई लगती है। लेकिन अपनी केन्द्रापसारी गतिकी के बावजूद यह मोबाइल स्कूल वही शिक्षा 'हस्तांतरित' करना चाहता है जो इस विकास मॉडल का एक उपोत्पाद भी है और उसका अधिप्रमाण भी। जब एक संभावित (टारगेट ?) छात्र इस जिहादी शिक्षक को दो टूक मना कर देता है तो जो इन्सेंटिव्स यह शिक्षक उस बच्चे के सामने रखता है उसमें ज्ञानार्जन के द्वारा प्राप्त हो सकने वाले तमाम फायदों और शक्तियों के अलावा यह भी शामिल है कि फिर तुम किस्से कहानियां भी पढ़ सकोगे, जान सकोगे। बच्चा कहता है, लेकिन मैं कई कहानियां वैसे भी जानता

हूं और एक कहानी सुनाने लगता है। यह कहानी वैसी नहीं जैसी हम बच्चों को सुनाते हैं - एक परिकथा या नीति-कथा। यह उसके अपने हिंसक उदास अनुभव की कथा है जिसमें उसका एक साथी उसके बहुत मना करने के बावजूद एक खरगोश का सर काट देता है और दोनों लड़ते हैं। कहानी सुनने के बाद शिक्षक की प्रतिक्रिया भयानक है- कहां मैं तुम्हें शिक्षित करना चाहता हूं और कहां तुम मेरा वक्त बरबाद कर रहे हो।

क्या वो एक शिक्षक है ? नहीं वो शिक्षा का गॉस्पेल गाने वाला एक हरकारा है। हमारे सामने वो अक्सर आता है कई-कई रूप धरकर। कभी व्यवस्था के, कभी सरकारी, तो कभी गैर सरकारी लिबास में। उसके पास सदैव ज्ञान का वह तख्ता/सलीब होता है जिस पर उसे दैवीय अक्षरों की तरह हमारी नियति को उकेरना होता है।

फिल्म में इस तख्त-ए-सियाह की अपनी नियति बेहद दिलचस्प है। पहले वो एक स्ट्रेचर बनता है, फिर इस शिक्षक की अजीबो-गरीब शादी में हक-मेहर, फिर टूटी हड्डी जोड़ने की तख्ती और अन्त में सीमा पार इराक-अपने मातृ देश, जाती हुई उसकी अब तलाकशुदा बीबी की पीठ पर लिखी प्रेम की इबारत के लिए एक स्लेट। दरअसल सलीब की तरह तख्त पीठ पर लादे इस शिक्षक का बिम्ब शुरू में हमें जितना सम्मोहित और उद्वेलित करता है, बाद में उतनी ही चिढ़ भी पैदा करता है। युद्ध के समय में जब सलामत बचे हुए स्कूल भवन भी किसी और ज्यादा महत्त्वपूर्ण उद्देश्य के लिए अधिग्रहित कर लिए जाते हैं, बम से उड़ा दिये गए स्कूल का यह सर्वाइवर क्यूं सेल्समैन की तरह दर-दर शिक्षा-शिक्षा पुकार रहा है जबकि इसकी अपने छात्रों के उदास यथार्थ में कोई दिलचस्पी नहीं ? जवाब बहुत आसान है और हमारी आंखों के सामने है, यह उसके अपने सर्वाइवल का संकट है। वह ऐसा हरकारा है जो उसी क्षण मर जाएगा जब गॉस्पेल भूल जायेगा। वह हमारे आधुनिक विकास का हरकारा है और इसलिए उसका एक विषय, एक दयनीय शिकार भी। उसे किसी तरह महान संदेश पहुंचाने का यह कर्त्तव्य करते रहना है। जब बच्चे उसे निराश कर देते हैं तो वो एक ऐसे काफिले के सामने यही प्रस्ताव रखता है जिसके सब सदस्य वृद्ध हैं - वास्तविक वृद्ध और असमय वृद्ध युवा। जब वे भी नहीं सुनते तो काफिले की एक मात्र स्त्री एक विधवा से शादी का प्रस्ताव भी मान लेता है और उसे भी वही सब सिखाने की कोशिश करता है जो वह अटल उपचार की तरह जानता है। फिल्म के अंत में सीमा के इस पार खड़ा यह जिहादी हम में करुणा और शोक जगाता है। अपने तख्त-ए-सियाह, अपने सलीब से वंचित यह अर्द्धरुग्ण छवि खुद उसी का मर्सिया बन जाती है जिसके जल्वे को फैलाने के लिए उसका जन्म हुआ था।

ब्लैकबोर्ड्स या तख्त-ए-सियाह बहुत सीधी-सी बात को हमारे ध्यान में लाती है : शिक्षा एक कुएं की तरह है, स्थिर और हर बार प्यासे को उस तक चल कर जाना होता है। स्कूल छात्र को नहीं ढूंढ़ता, छात्र स्कूल को ढूंढ़ता है। 'लोक कल्याणकारी' कहलाने वाली व्यवस्थाएं 'विकास' और 'कल्याण' के अपने 'प्रॉमिस' को पूरा करने के लिए संभावित छात्र को ढूंढ़ती हैं, उसे प्रेरित करती हैं, उसके अभि-भावकों को प्रलोभन देते हैं किन्तु स्कूल इस अभियान में कुएं ही बने रहते हैं - अपनी जगह स्थिर, अटल। वे ऐसे 'ज्ञान के केन्द्र' बने रहते हैं जिसमें स्थान की स्थिरता के साथ ज्ञान भी अपरिवर्तनीय रूप में बना रहता है और इस तरह केन्द्राभिसारी विकास मॉडल के विश्वसनीय उपकरण भी।

ब्लैकबोर्ड विकास के हमारे दैवीय आख्यान और शिक्षा की हरकारा हैसियत का मर्सिया है।

ओवर हैड प्रोजेक्टर्स, एलसीडी युक्तियों और व्हाइटबोर्ड्स व रंगीन मार्कर्स के द्वारा परिभाषित होने वाले क्लास रूम के इस समय में हमें शायद ब्लैकबोर्ड के उन रूपकात्मक अर्थों को भी फिर से पढ़ना चाहिए जिन्हें अब तक हमने किसी गफलत में नहीं पढ़ा। काली पृष्ठभूमि पर उभरते हुए सफेद अक्षर। काला और सफेद, अंधेरा और रोशनी, धर्मपरायणता और काफिरी, ईश्वर और शैतान, अच्छा और बुरा की दो टूक द्विधा से संचालित हमारी अस्तित्व की समझ और नैतिकता के लिए तख्त-ए-सियाह ज्ञान का, जागरण का, इल्हाम का सहज, अंतरंग रूपक था। ब्लैकबोर्ड आधुनिक ज्ञान में अंतर्निहित औपनिवेशिकता का एक आकर्षक किन्तु पारदर्शी व्यंजक था, यह कम से कम अब तो समझ ही लेना चाहिए। बेहतर नहीं होगा कि सारे जिद्दी ब्लैकबोर्ड्स स्ट्रेचर बन जायें। अरे, आप इतने सफेद क्यूं पड़ गये ? क्या कल्पना से डर गये ? डरिये मत अभी कई पीढ़ियों तक ऐसा नहीं होगा। हां, अपने बच्चे से जरूर पूछ लीजियेगा उसके पास आपको सुनाने के लिए कोई कहानी तो नहीं ? ◆

फिल्म - ब्लैकबोर्ड्स
निर्मित - सन 2000 में
निर्देशन - समीरा मखमल बाफ
पटकथा - मोहसेन मखमल बाफ एवं समीरा मखमल बाफ